समाज और साहित्य

डॉ. आर.पी. वर्मा
असि. प्रो एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,
जनपद–उन्नाव, उ.प्र.

साहित्य समाज की चेतना में सांस लेता है। यह समाज का वह परिधान है जो जनता के जीवन के सुख–दुख, हर्ष–विषाद, आकर्षक–विकर्षण के ताने–बाने से बुना जाता है। उसमें विशाल मानव–जाति की आत्मा का स्पन्दन ध्वनित होता है। वह जीवन की व्याख्या करता है, इसी से उसमें जीवन देने की शक्ति आती है। वह मानव को, उसके जीवन को लेकर ही जीवित है, इसीलिए वह पूर्णतः मानव केन्द्रित है। साहित्य उसी मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार रूप है और मानव सामाजिक प्राणी है। सामाजिक समस्याओं, विचारों तथा भावनाओं का जहाँ वह स्त्रष्टा होता है, वहीं वह उनसे स्वयं भी प्रभावित होता है। इसी प्रभाव का मुखर रूप साहित्य है। इसी से विद्वानों ने '**साहित्य को समाज का दर्पण**' कहा है।

साहित्य का अर्थ है– जो हित सहित हो। भाषा का माध्यम से ही साहित्य हितकारी रूप में प्रकट होता है। भाषा मनुष्य की सामाजिकता को विशेष रूप से पुष्ट करती है। उसी के द्वारा मानव–समाज में एक–दूसरे के सुख–दुख में भाग लेने का सहकारिता का भाव उत्पन्न होता है। साहित्य मानव के पारस्परिक सामाजिक सम्बन्धों को और भी अधिक दृढ़ बनाता है। क्योंकि उसमें सम्पूर्ण मानव–जाति का हित सम्मिलित रहता है। साहित्य साहित्यकार के भावों को समाज में प्रसारित है जिससे सामाजिक जीवन स्वयं मुखरित हो उठता है, क्योंकि साहित्यकार सामाजिक प्राणी होता है।

समाज की उन्नति तभी सम्भव है–जब हमारा हृदय संवेदनशील तथा बुद्धि विकसित और परिष्कृत हो। इन दोनों कार्यों के लिए साहित्य सबसे प्रभावशाली साधन है। वह हमारे हृदय को संवेदनशील बनाता है, हमारी अनुभूतियों का परिष्कार करता है। साहित्य–सेवन से हमारा मन परिष्कृत और हृदय उदार हो जाता है। साहित्य का आनन्द लेने के लिए हमें सतोगुणात्मक वृत्तियों में रमने का अभ्यास हो जाता है। साहित्य–सेवन से मनुष्य की भावनाएँ कोमल बनती है। उसके भीतर मनुष्यता का विकास होता है, शिष्टता और सभ्यता आती है, जिससे दूसरों के साथ व्यवहार करने की कुशलता प्राप्त होती है। इससे समाज में शान्ति की स्थापना होकर विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। अतः सामाजिक जीवन में साहित्य का महत्व निर्विवाद है।

आचार्य मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन बताए हैं –

"काव्यं यशसेऽर्थकरे व्यवहार विदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।"

अर्थात काव्य का प्रयोजन है– यश, अर्थ, व्यवहार–कुशलता, अमंगल से रक्षा, आनन्द और कान्ता के समान मधुर उपदेश देना। ये छः प्रयोजन जीवन के भी सर्वमान्य प्रयोजन है। जीवन में हमें यश की आकांक्षा रहती है, अर्थ भी सभी चाहते हैं। (यहाँ, 'अर्थ' शब्द का अभिप्राय स्पष्ट कर लेना चाहिए। आचार्य शुक्ल के अनुसार– "अर्थ का स्थूल और संकुचित अर्थ द्रव्य

प्राप्ति ही नहीं लेना चाहिए, उसका व्यापक अर्थ लोक की सुख–समृद्धि लेना चाहिए।") जीवन के सुचारू संचालन के लिए व्यवहार–कुशलता की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। अमंगल से रक्षा हुए बिना जीवन अभिशाप बन जाता है। मधुर उपदेश के प्रभाव के उदाहरणस्वरूप सम्पूर्ण साहित्य उपस्थित किया जा सकता है। जब अनेक नीति–शास्त्र उपदेश और ताड़ना द्वारा हमें समझाने में असमर्थ रहते हैं, उस समय भी मधुरता और कोमलता से भरी यह वाणी हमें वश में करके हमसे जो चाहती है, करा लेती है। और उपर्युक्त प्रयोजनों की आवश्यकता हमें तभी पड़ती है, जब हम समाज के एक अभिन्न अंग होते हैं। वनवासी, समाज के विच्छिन्न एकान्त में जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति के लिए इनकी कोई आवश्यकता नहीं होती। फिर हम समाज, सामाजिक मनुष्य और साहित्य को पृथक, करके कैसे देख सकते हैं ?

आज तक विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और सभ्यताओं का प्रधान उद्देश्य और प्रयत्न–मानव–जीवन को अधिक–से–अधिक सुन्दर और आनन्दमय बनाने का रहा है। विज्ञान ने सदैव से प्रयत्न किया है कि वह मानव को श्रम के भार से यथाशक्ति मुक्त कर उसे शारीरिक और भौतिक सुविधा प्रदान कर सके। राजनीति समाज को आर्थिक एकता के सूत्र में बद्ध करने तथा उसकी सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील है, और दर्शन आध्यात्मिक सिद्धान्तों की खोज और प्रसार द्वारा मानव का और सांसारिक माया–मोह के प्रति अधिक आसक्त न रहने का पाठ पढ़ाने का प्रयत्न करता आया है और कर रहा है। परन्तु इनका यह काम बिना कवि की सहायता के पूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि मानव नीरस उपदेश नहीं सुनना चाहता। समाज के लिए भौतिक सुविधा भी उतनी ही आवश्यक है जितनी कि दार्शनिक सिद्धान्तों की, परन्तु वह इन सबसे ऊपर उस सत्य और सौन्दर्य को प्राप्त करना और उसका उपभोग करना चाहता है जो उसे जीवन की प्रत्येक सम–विषम परिस्थितियों में अनुप्राणित कर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहता है। साहित्यकार जब इन भौतिक सुविधाओं और दार्शनिक सिद्धान्तों को कलात्मक ढंग से उपस्थित करता है, तभी हमारे मन में उनके प्रति अनुराग और पावन भावना उतपन्न होती है। "ऐसा होने पर हमारे मन में ओज, बाहुओं में बल, मुख पर प्रसन्नता, हृदय में उत्साह और प्रेम, बुद्धि में विवेक तथा आत्मा में आनन्द–उल्लास प्रवाहित होता है। कवि का सत्य हमारे जीवन का सत्य है और हमारे हृदय और भावनाओं का सत्य है, जिसके माध्यम से हम एक–दूसरे से मिले हुए हैं।" इसलिए सामाजिक उन्नयन में साहित्य का महत्व सर्वोपरि और सर्वप्रमुख है। साहित्य समाज में प्रचलित गलत, भ्रान्तिपूर्ण तथा अन्याय–अत्याचार का समर्थन करने वाली रूढ़ियों, मान्यताओं आदि का वास्तविक गर्हित रूप अंकित कर उनके विरोध में आवाज उठाता है। सामाजिक उन्नयन का यह भी एक रूप है।

हमारे सामाजिक जीवन की उन्नति, सुव्यवस्था और परिपूर्णता के लिए शान्ति और सहयोग की आवश्यकता है। आप आँख दिखाकर किसी को वश में नहीं कर सकते। केवल मधुर और कोमल वाणी ही हृदय पर प्रभाव डालती है और उसके द्वारा आप दूसरों से मनचाहा कार्य करा सकते हैं। तुलसी इस बात को जानते थे–

"तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।

वशीकरण इक मन्त्र है परिहर वचन कठोर।।"

साहित्य का कान्ता–सम्मित मधुर उपदेश बड़ा प्रभावकारी होता है। केशव के एक छन्द ने बीरबल को प्रसन्न कर राजा इन्द्रजीत सिंह पर किया हुआ जुर्माना माफ करवा दिया था। पृथ्वीराज के साहित्यिक–पत्र के महाराजा प्रताप को पुनः अकबर से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध कर दिया था। बिहारी के एक दोहे ने मिर्जा राजा जयसिंह का जीवन बदल दिया था। आल्हा पढ़

या सुनकर आज भी वीरों के भुजदण्ड फड़कने लगते हैं। यह तो हुआ–हमारे सामाजिक जीवन के बाह्य पक्ष पर साहित्य का प्रभाव।

हमारे जीवन के आन्तरिक विकास के लिए साहित्य हमारे हृदय में अलौकिक आनन्द की सृष्टि करता है। इस प्रकार साहित्य हमारे बाह्य और आन्तरिक जीवन को निरन्तर प्रभावित करता रहता है। जीवन की पूर्णता के लिए तथा उसको सुन्दर, मधुर, सरस और व्यापक बनाने के लिए साहित्य का योगदान अविस्मरणीय माना जाता है। इसके अतिरिक्त हमारे विफलता और किंकर्तव्यविमूढ़ता के अवसर पर साहित्य हमारी सहायता कर हमारी निराशा को दूर करता है। इस प्रकार साहित्य माता के समान हमारा पालन करता है, पिता के समान रक्षा और वृद्धि करता है, गुरु के समान शिक्षा देता है, सुहृद के समान मार्ग दिखाता है और प्रिया के समान मधुर स्नेह की साकार मूर्ति बनकर सामने आता है। ऐसे साहित्य से हमारे जीवन का अटूट सम्बन्ध है।

'समाज' और 'साहित्य' का उपर्युक्त सम्बन्ध अनादि काल से, साहित्य के उदय काल से चला आ रहा है। वाल्मीकि ने अपनी रामायण में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का चित्रण कर अपने दृष्टिकोण के अनुसार समाज के विभिन्न पहलुओं की विवेचना करते हुए यह सिद्ध किया कि मानव–समाज किस पथ का अनुसरण करने से पूर्ण सन्तोष और सुख का अनुभव कर सकता है। तुलसी ने भी अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर रामराज्य और राम–परिवार को मानव–समाज के सम्मुख आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। इसका कारण यह है कि– "कवि वास्तव में समाज की अवस्था, वातावरण, धर्म–कर्म, रीति–नीति तथा सामाजिक शिष्टाचार या लोक–व्यवहार से ही अपने काव्य के उपकरण चुनता है और उनका प्रतिपादन अपने आदर्शों के अनुरूप ही करता है। साहित्यकार उसी समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें वह जन्म लेता है। वह अपनी समस्याओं का सुलझावा, अपने आदर्श की स्थापना अपने समाज के आदर्शों के अनुरूप ही करता है। जिस सामाजिक वातावरण में उसका जन्म होता है, उसी में उसका शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास भी होता है।" इस प्रकार साहित्यकार जिस समाज का अंग होता है, उस समाज का ही चित्रण करता है। यह दूसरी बात है कि वह इस चित्रण में समाज के सुधार की भावना से प्रेरित होकर एक आदर्श की स्थापना करता है या उसका यथातथ्य चित्रण कर, केवल एक संकेत दे, दूर हट जाता है, जिससे समाज उस चित्रण पर मनन करने के लिए विवश हो जाये। ऐसे साहित्यकार युग–युग तक समादृत होते रहते हैं। इसके विपरीत, कुछ ऐसे भी साहित्यकार होते हैं जो समाज का यथातथ्य चित्रण कर कोई सुझाव या आदर्श उपस्थित करने में असमर्थ रहते हैं। समाज ऐसे साहित्यकारों की ओर एक बार दृष्टि डाल, उन्हें सदैव के लिए भूल जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी साहित्यकार होते हैं जो अपने युग और समाज की उपेक्षा कर, विदेशी साहित्यकारों की नकल करते हुए ऐसे साहित्य का सृजन करते हैं जिसमें उनका युग और समाज प्रतिबिम्बित नहीं होता। ऐसा साहित्य क्षण–जीवी होता है।

साहित्य में '**कला, कला के लिए**' सिद्धान्त समर्थक जीवन या समाज में कला और साहित्य का कोई स्थान नहीं मानते। उनका कहना है कि साहित्य हमारी कल्पना का खिलवाड़ है। क्रोचे ने 'इन्ट्यूशन' को, जिसे सामान्य भाषा में 'इलहामवाद' कहा जा सकता है, साहित्य का प्रेरक कहा है। उसका कहना है कि हमारे मन में कभी–कभी ऐसी कल्पनाएँ उठती हैं जिनका प्रत्यक्ष से कोई सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु कल्पना का कोई–न–कोई आधार अवश्य रहता है। इसलिए साहित्य चाहे रोमान्टिक हो या यथार्थवादी, प्रगतिशील हो या काल्पनिक या वास्तविक हो–कल्पना का प1ट सब में कुछ–न–कुछ अवश्य रहता है। और यह कल्पना

केवल शून्य का आधार लेकर हवाई महलों का निर्माण नहीं कर सकती। कल्पना का आधार भी वास्तविक जगत और समाज ही होता है। कवि अपने युग, अपने समाज, अपनी परिस्थिति की उपेक्षा कर मात्र कल्पना के आकाश में विचरण नहीं कर सकता। कोई भी साहित्यकार 'वास्तव' की पूर्ण उपेक्षा नहीं कर सकता। समाज की जो समस्याएँ है, उनका जो रूप है, उन्हीं के आधार पर साहित्य की सृष्टि हो सकती है। इसीलिए साहित्य को समाज से पृथक करके नहीं देखा जा सकता। साहित्यकार समाज का मुख और मस्तिष्क– दोनों होता है। उसकी पुकार–समाज की पुकार होती है। उसकी बनाई हुई सामाजिक भावों की मूर्ति समाज की नेत्री बन जाती है। इस प्रकार वह अपने समाज का उन्नायक और विधायक होता है, हम उसके द्वारा समाज के हृदय तक पहुंच जाते हैं।

बाबू गुलाबराय के शब्दों में– "कवि या लेखक अपने समय का प्रतिनिधि होता है। उसको जैसा मानसिक खाद मिल जाता है–वैसी ही उसकी कृति होती है। वह अपने समय के वायुमण्डल में घूमते हुए विचारों को मुखरित कर देता है। कवि वह बात कहता है, जिसका सब लोग अनुभव करते हैं : किन्तु जिसको सब लोग कह नहीं सकते। सहृदयता के कारण उसकी अनुभव–शक्ति औरों से बढ़ी–चढ़ी रहती है।" इसलिए यदि साहित्यकार समाज से असम्पृक्त कला का ही चित्रण करना चाहेगा तो वह अपने समाज से अछूता कैसे रह सकता है। प्रकट या अप्रकट रूप में उस पर सामयिक विचारधाराओं और परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ेगा। प्रत्येक युग का साहित्य इसका प्रमाण है। हमारे पौराणिक साहित्य में ब्राह्मण–धर्म की जय घोषण की गई। बौद्ध–युग और वैष्णव–युग में साहित्य द्वारा भी साहित्यकारों ने अपने–अपने सम्प्रदाय और उसके महत्व का प्रचार किया था। इसलिए युग–समस्या की उपेक्षा कर यदि कोई कलाकार कला की सृष्टि करना चाहेगा तो वह कला मिथ्या तथा कृत्रिम होगी। उसकी सामाजिक उपादेयता नगण्य होगी और ऐसा होने पर उसका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। ऐसा साहित्य क्षणजीवी होता है।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। लेकिन कुछ साहित्य–प्रेमी इस प्रतिबिम्ब में अपनी रसिक आकृति के सिवा और कुछ भी नहीं देखना चाहते। वे इस बात का विरोध करते हैं कि साहित्य में सौन्दर्य के और वह भी निष्क्रिय सौन्दर्य के अतिरिक्त और किसी भी प्रकार का चित्रण होना चाहिए, क्योंकि उनकी दृष्टि में साहित्य केवल हमारे मनोरंजन का साधन है न कि हमें उसमें उपयोगिता ढूंढनी चाहिए। ऐसे साहित्य प्रेमी–रसिकों की भर्त्सना करते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा ने उचित ही कहा है कि– "यदि रसिकगण दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं तो उन्हें साहित्य की परिभाषा बदल देनी चाहिए। तब कहना चाहिये कि साहित्य वह दर्पण है जिसमें समाज के उन विशेष लोगों की ही शक्ल दिखाई देती है– जो दुपल्ली टोपी लगाये, पान खाये, सुरमा रचाये, इस दुनिया से दूर नायिका–भेद के संसार में विचरण करते हैं। इन साहित्य–मर्मज्ञों के हृदय इतने सहृदय हो गये हैं कि जिस बात से 70 करोड़ जनता के हृदय को ठेस लगती है, वह उनके मर्म को छू भी नहीं पाती। इनका कुसुम–कोमल हृदय नकली गर्मी से उगने वाले पौधों की तरह एक कृत्रिम साहित्य की उत्तेजना पाकर ही विकसित होता है। ये लोग कहें तो ठीक ही होगा कि लेखकों को जनता से दूर रहना चाहिये।"

इस प्रकार साहित्य और समाज निरन्तर एक–दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। दोनों आदान–प्रदान तथा क्रिया–प्रतिक्रिया–भाव चलता रहता है। इसी से सामाजिक उन्नति की आधारशिला दृढ़ बनती है। संसार में अभी तक हुए सम्पूर्ण परिवर्तनों या विप्लवों के मूल में कोई–न–कोई विचारधारा कार्यरत रहती आई है।

इस विचारधारा का चित्रण साहित्य द्वारा होता है। वह साहित्य हमारे ज्ञान को विस्तृत कर, हमारे वर्तमान जीवन की विषमता का चित्रण कर, हमें वर्तमान के प्रति असंतुष्ट बनाता है। उसके द्वारा जब हम दूसरों से अपनी अवस्था की तुलना कर अपने को हीन महसूस करते हैं, तब हमारे हृदय में असन्तोष की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है। फ्रांस की प्रसिद्ध राज्य–क्रान्ति के मूल में वाल्तेयर और रूस के क्रान्तिकारी विचार कार्य कर रहे थे। रूस की राज्य–क्रान्ति भी रूसी लेखकों के उग्र विचारों का ही प्रतिफल थी। भारतीय स्वाधीनता–संग्रम में स्वतन्त्र देशों की क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित साहित्य ने बहुत बड़ा भाग अदा किया था। यह तो हुआ साहित्य का समाज पर सत्प्रभाव।

इसके विपरीत, कुछ साहित्यकार ऐसे भी होते हैं और हुए हैं, जो दूसरी जाति को पराधीन बनाने के लिए उसकी सभ्यता और संस्कृति का बड़ा विकृत चित्रण करते हैं। आयरलैण्ड के स्वाधीनता–संग्राम के पीछे उसके शासक और प्रतिपक्षी इंगलैंड के कतिपय साहित्यकारों का यही प्रयत्न कार्य कर रहा था। उन लोगों ने आयरिश जाति में ऐसे साहित्य का वितरण किया जो उस जाति के जातीय–साहित्य और संस्कृति के आदर्श को ध्वंस कर उनकी अपनी दृष्टि में आयरलैण्ड के अतीत को निन्दनीय सिद्ध कर, उनके मन में शासक–जाति के प्रति मर्यादा का भाव जाग्रत कर सके। पार्नेल के राजनीतिक जीवन के अवसान के बाद आयरिश–देशभक्तों का ध्यान इस घातक और विषम स्थिति के प्रति आकर्षित हुआ तब साहित्य–साधना के मार्ग द्वारा आयरिश–जाति में नूतन जीवन का उद्‌बोधन करने की चेष्टा होने लगी। आयरिश–साहित्यकारों ने अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले घातक प्रचार का पर्दाफाश करते हुए अपनी संस्कृति, इतिहास और देश की महानता के गीत गाये। भारत में भी अंग्रेजों ने यही किया था। लार्ड मैकॉले जैसे अंग्रेज–साहित्यकारों ने भारत के इतिहास भाषा, संस्कृति और साहित्य के सम्बन्ध में तथ्यहीन, अनर्गल बातों का प्रचार कर भारतीयों के हृदय में भारत के प्रति हीनता और उपेक्षा की तथा अंग्रेज, अंग्रेजी और अंग्रेजियत के प्रति सम्मान की ऐसी भावना उत्पन्न कर दी थी जिससे हम आजाद होने के लगभग चालीस वर्ष बाद, आज भी मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। नीत्शे आदि जर्मन दार्शनिकों के विचार, जिन्होंने जर्मन जाति में शक्ति की उपासना तथा अपनी सभ्यता के विस्तार के भाव उत्पन्न किये थे, विगत विभिन्न यूरोपीय महासमरों के लिए उत्तरदायी है। वीरगाथाकालीन चरणों के उत्तेजनापूर्ण छन्द अपने आश्रयदाताओं को उत्तेजित कर सदैव मार–काट के लिए प्रेरित करते रहते थे। इसी प्रकार केवल श्रृंगार का ही अतिशय और नग्न चित्रण करने वाले साहित्यकार विलास भावना को ही बढ़ावा देते हैं।

इसके विपरीत, संसार में सदैव ऐसे साहित्य की रचना अधिक होती आई है जो मानव–जीवन में सुख और शान्ति की भावना भरता आया है। कबीर और तुलसी का साहित्य इसका प्रमाण है। 'मानस' ने कितने हताश और भीरु हृदयों को सान्त्वना देकर कार्यक्षेत्र में अवतरित होने के लिए सन्नद्ध किया था। समर्थ गुरू रामदास और महाराष्ट्रीय सन्तों के उपदेश तथा भूषण आदि कवियों की उत्साह–प्रदायिनी रचनाओं ने महाराष्ट्र के उत्थान में कितनी सहायता प्रदान की थी। समर्थ गुरू रामदास और महाराष्ट्रीय सन्तों के उपदेश तथा भूषण आदि कवियों की उत्साह–प्रदायिनी रचनाओं ने महाराष्ट्र के उत्थान में कितनी सहायता प्रदान की थी। प्रेमचन्द के साहित्य ने हमारी सामाजिक और राजनीतिक चेतना को कितना प्रभावित किया था। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों ने हमारे हृदय में अपने गौरवमय अतीत के प्रति गौरव की भावना भरकर हमें अपनी वर्तमान दीनावस्था की ओर देखने के लिए प्रेरित किया था। हमारे ऐतिहासिक कृतियों की रचना करने वाले साहित्यकारों ने हमारे हृदय में विदेशियों द्वारा आरोपित इस भाव

को कि–हमारे पूर्वज जंगली थी', जड़–मूल से उखाड़ फेंका था। इस प्रकार साहित्य समाज को युग–युगान्तरों से प्रभावित करता आया है।

साहित्य का प्रभाव इतना गहरा और व्यापक होता है कि उसके प्रभाव के सम्मुख शस्त्रों का आतंक फीका पड़ जाता है। साहित्यिक–विजय शाश्वत होती है और शास्त्रों की विजय क्षणिक। अंग्रेज तलवार द्वारा भारत को दासता की श्रृंखला में इतनी दृढ़तापूर्वक नहीं बांध सके, जितना अपने साहित्य के प्रचार और हमारे साहित्य का ध्वंस करके सफल हो सके। आज उसी अंग्रेजी भाषा और साहित्य का प्रभाव है कि हमारे सौन्दर्य–सम्बन्धी विचार, हमारी कला का आदर्श, हमारा शिष्टाचार आदि सब यूरोप से प्रभावित हो रहे हैं। यूनान ने अपनी कला द्वारा सम्पूर्ण यूरोपीय जीवन को प्राचीन काल से लेकर आज तक प्रभावित कर रखा है– यह समाज पर साहित्य के प्रभाव का प्रतीक है।

साहित्य हमारे अमूर्त और स्पष्ट भावों को मूर्त रूप दे, उनको परिष्कार कर, हमें प्रभावित करता है। हमारे अपने विचार ही साहित्य का आवरण पहनकर समाज का नेतृत्व करते हैं। साहित्य हमारे विचारों की गुप्त शक्ति को केन्द्रस्थ करके उसे कार्यरत बनाता है। साथ ही गुप्त रूप से हमारे सामाजिक संगठन और जातीय जीवन की वृद्धि में निरन्तर योग देता रहता है। हमारे विचार समाज द्वारा ही बनते हैं। हम अपने विचारों को अमूल्य समझते हैं। उन पर हमें गर्व होता है और साहित्यकार हमारे उन्हीं विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए हम उसे अपने जातीय सम्मान और गौरव का संरक्षक मान, यथेष्ट सम्मान प्रदान करते हैं। शेक्सपीयर और मिल्टन पर अंग्रेजों को गर्व है। वाल्मीकि, कालिदास, सूर और तुलसी पर हमें गर्व है, क्योंकि उनका साहित्य हमें एक संस्कृति और एक जातीयता के सूत्र में बांधता है। अपनी किसी सम्मिलित वस्तु पर गर्व करना जातीय जीवन और सामाजिक संगठन का प्राण है। जैसा हमारा साहित्य होता है, वैसी ही हमारी मनोवृत्तियाँ बन जाती हैं और उन्हीं के अनुकूल हम कार्य करने लगते हैं। इस प्रकार साहित्य हमारे समाज का दर्पण मात्र न रहकर, उसका नियामक और उन्नायक भी बन जाता है।

किसी भी जाति, सम्प्रदाय या धर्म की जो मान्यताएँ और विचार होते हैं उन्हीं के अनुसार उसके साहित्य का निर्माण होता है। मुसलमान मूर्तिपूजा के विरोधी है, अतः उनके साहित्य में नाटकों का एकान्त अभाव रहा है। इसी प्रकार मिल्टन के पेराडाइज लॉस्ट की तुलसी कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे, और न मिल्टन तुलसी के मानस की। इसका कारण यह है कि प्रत्येक जाति का अपना रहन–सहन रीति–रिवाज और आचार–विचार होते हैं। साहित्य में उन्हीं का चित्रण होता है। अन्य साहित्य दूसरे साहित्यों को प्रभावित अवश्य करते हैं और कर सकते हैं–परन्तु आंशिक रूप में ही।

साहित्य और समाज में घनिष्ठ–से–घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होने पर भी दोनों में थोड़ा–सा अन्तर रहता है। जीवन की धारा अक्षुण्ण है। साहित्य में उसकी प्राणदायिनी और रमणीय बूँदें एकत्रित होने लगती है। सामाजिक जीवन तो अनेक नियमित–अनियमित, ज्ञात–अज्ञात घटनाओं की श्रृंखला का समष्टि रूप है। यह सत्य है कि समकालीन समाज साहित्य को प्रभावित करता रहता है, परन्तु साहित्यकार का सम्बन्ध केवल वर्तमान से ही न होकर–अतीत और भविष्य से भी होता है। महान कलाकार तो देश और काल की सीमा से ऊपर उठ सार्वभौम समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके लिए सामयिक और स्थानीय जीवन का उतना ही महत्व है–जितना वह उनके विराट सर्वकालीन यथार्थ जीवन की कल्पना में सहायक बन सकता है। इसके अतिरिक्त साहित्य में कुछ ऐसा विशिष्ट वर्णन होता है जो यथार्थ जीवन से मेल नहीं खा

पाता। इसका कारण यह है कि साहित्य में मानव का जीवन ही नहीं, जीवन की वे कामनाएँ भी जो अनन्त जीवन में पूर्ण नहीं हो सकती, निहित रहती हैं। साहित्य जीवन की इन्हीं अपूर्णताओं को पूर्ण करता है, तभी वह जीवन से अधिक सारवान और परिपूर्ण है तथा जीवन का नियामक और मार्ग–द्रष्टा भी।

संदर्भ

- हिंदी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 91
- साहित्य और समाज–डॉ. आर.पी. वर्मा, पृ. 58
- हिंदी साहित्य का वस्तुपरख इतिहास–राम प्रसाद मिश्र, पृ. 155
- साहित्य और समाज का एक मूल्यांकन–डॉ. राजीव शर्मा, पृ. 125
- आधुनिक समाज में साहित्य और समाज की भूमिका–प्रो. राजकुमार कुरील, पृ. 25
- साहित्य समाज का अवधारणा–डॉ. चित्रलेखा, पृ. 95

Copyright © 2017, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.